

पाषाण पंक्ति

(कविताएँ)

अनुरजन प्रसाद सिंह

१९६७

ज्ञान भारती प्रकाशन

पटना ८

PASHAN PANKTIYAN

(A Collection of poems)

By Anuranjan Prasad Singh

Price—Rupees Four only

1967

कापीराइट

श्री कृष्ण प्रसाद सिंह

आनन्द भवन, राज गिराज, नेपाल

आवरण शिल्पी—श्री श्याम शर्मा, पटना आर्ट्स स्कूल

मुद्रक—जमभूमि प्रेस, पटना-८

संस्करण—प्रथम

प्रकाशन वर्ष—१९६७

मूल्य—विशेष संस्करण—चार रुपए

साधारण संस्करण—तीन रुपए पचास पैसे

पत्राचार का पता—द्वारा जमभूमि प्रेस, पटना-८

प्रकाशक

ज्ञान भारती प्रकाशन

पटना-८

पाषाण पंक्तियाँ

अनुरजन प्रसाद सिंह

जीवन सगिनी को
इसलिय कि

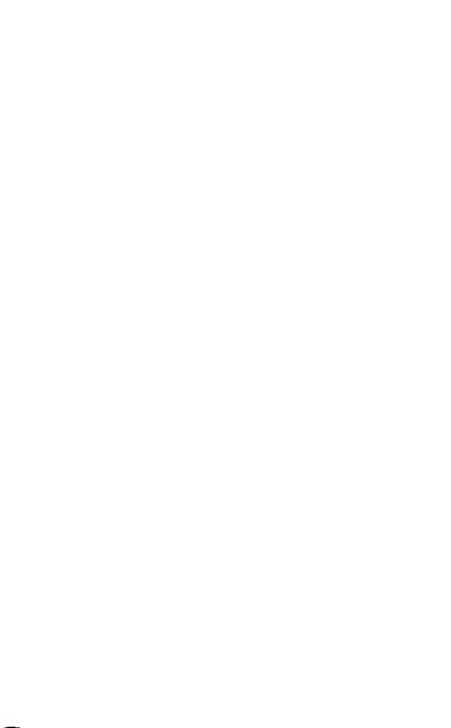
अनुक्रम

छपार जहर का	तीन
ठहरा हुआ समय	पाँच
भेगनीलिया	सात
बेला कूले आधी रात	नौ
आत्महत्याओं के अवशेष	ग्यारह
बदलते प्रतिमान	पन्द्रह
धड़कन की प्रतिध्वनि	अट्ठारह
औसत उबटारंगी	इकोस
ताली अगूर का रूआव	तेईस
तुम और मैं	सत्ताइस
अकिंचन भाग	अट्तीइस
मानो या न मानो	उनतीस
बेला और गुलाब	इकतीस
अनजानी अनचोन्हे	वैंतीस
अधीरे का जहर	सैंतीस

ક્રાંતિ પર શૂલતા ફેલા મસીહ	ઉનચાલીસ
‘શામ અ-અવધ’	ફકવાલીસ
રાવદશ	તેંતાલીસ
હમારો અપના	વેંતાલીસ
નફે નિમિત્તિ	ઉનચાસ
કેનવાસ	ફકાવન
સેતુ બેરે હેતુ	તિરપન
તુફાની દરિયા, ચોંદ બોર આકાશ	પવપન
સોલ દો તુમ શ્રધ્ધિ	ધુપન
હરતાશર	સવાવન

वृत्त : एक

उन्होंने 'ज्ञान' को 'ज्ञ' और समय को 'व्यय' बताकर
जीवन को अश्लील कहा ।



ख़तार, ज़हर का

हम करुणा के गीत
गीत की व्यथा, न जाने,
गाने को आए है कितनी बार यहाँ ।
ये मेघ, मेघ की थापों पर
ये अतरिक्ष के अंतर मे
कँपनेवाले संगीत,
चाँद तारों के अक्षर में विरचित
ये मौन गगन के छंद,
शृंग की मालाएँ जो भटक रही
पाने को नभ का झोर
नदी के ये फैले तटवर्ष,
न बन पाए कोमल मुजुवर्ष
तृप्ति मेघों से बँधकर कभी ।
हम अतृप्त की पीर,
पीर की कथा, न जाने,
कहने को आए हैं, कितनी बार यहाँ ।

धरती के धानी ओँचल पर
 सग आए है सरसों के पीले फूल
 फूल के धंगरा पर जो भटका रह
 अनजुस्त सपनों के चरण,
 चरण के पीछे जो बज रहा
 कहा पर दूर और भी दूर
 किंगी का मृदुल मृदुल मजीर
 हम इन्हा सभी अव्यक्तों की मधुगुँज,
 गुँज से तृप्ति, न जाने,
 पाने को उलझे है, कितनी बार यहाँ ।

ये घूम-घूम कर गाँव गली हर नगर
 हमे जानी-पहचानी लगती है जो डगर,
 डगर के अमलतास पीपल, बरगद और नीम,
 सभी परिचित से लगते,
 जिनके नीचे बैठ छाँव में
 अपने ही चौड़े कपाल की रेखाएँ
 जोड़ी हमने हर बार,
 सिक पट पर निज उँगली चला
 कि जिनसे उतर सके वह चित्र,
 चित्र की गरिमामय अभिव्यक्ति,
 कल्पना जिसकी झुनती तब
 हृदय में छायावत् जो रूप ।
 हम इन्ही सभी यतिभगो के पी जहर,
 जहर के प्यार, न जाने,
 छदवध करने को हम,
 जन्मे है, कितनी बार यहाँ ।

वह रा हुआ समय

जब स मैं कट गया हूँ उन क्षणों से,
मजदूरियों के सिज्दे में हाकर भी
स्वीकार करता हूँ तुम्हारा आभार
उन क्षणों के लिए जिनने जन्म दिए
नयी मान्यताओं की स्थापनाओं को ।

सगता है,

भूत में कट कर भटक गईं तुम अपदस्थ प्रयत्नी हो
मजदूरियों के सिज्दे में जब मैं पड़ा था
मेरे ऊपर से धुंधुराले बादल गुजर गए
किंतु मैं कोई संदेश नहीं भेज सका
काल ने मुझे कालिदास घोषित नहीं किया
लेकिन मैं अधोषित जो आगे गया
सबका आभार मैं कैसे स्वीकार नहीं करूँ ?

ऊर्जस्वित तपित मिट्टीवाली जमीन को
सिक्त और तृप्त कर
मैंने जो किंजल्क-कुसुम उगाए
सुन्दर तुम भ्रम में
लावारिस बरसाती झरक पु ज भक्त समय लेना ।

'जा गिरजाता हूँ
 घर और का हा जाता है
 तुम को क्या हूँ ?
 भूत व शून्य में तुम मेरा यत्नमाग स्वीकार करा ।
 रक्त काला और अन्धरा ग
 सुप्त गगन उपरत है
 अरुणित अधरी की संतुलना व ग्यामाग समर में
 समय के उस द्रोह से टरर गण प्रतगान में
 सुप्त जीता चेहरे परमद है ।
 लेकिन व समर और अंतराल
 शब्द शिला पर गुद गए पात ।

अनाद्युक्त पतित वक्षम्यला का समस्त अनरुद नाद
 मैंने सुना है सराजा व उपधान पर माया रखकर
 किंतु समय व उन पल क्षिणों से हटा दिये जाने पर
 मैं अन्न दिन और रात व प्रतिमानों में नपने लगा हूँ
 फिर आगे वर्ष और युग के मापनों में
 डाल कर लोग देखेंगे ।

लेकिन मैं उन पल क्षिणों में जीता रहूँगा
 इसलिए तुम्हारा आभार स्वीकार करता हूँ
 हालाँकि मालिक से मैंने विनती की थी
 लेकिन न दिन समय से पहले गया
 और न सुनहरे देर से आई ।

अदृश्य आकाश में कट कर भटकती हुई पतंग सी
 उस छोटी सी मुलाकात के लिए
 तुम मेरा वर्तमान और सुझे लो
 फिर मुलाकात हो न हो ।

•

मैगनोलिया

कल जो मेरे सपनानी मे अनुभूत हुई थी
दूर बजती शिजिनी की तरह
बगैर कोई चादर ओढे वर्णमालायाँ से बुनी किसी विधा की
लेकिन विरोध की पराजय के पहले
लब्ध मान्यता को अवज्ञा दी है ।

सपनानी में ध्वनित
जिस भी गीता, रीता या रीना की शिजिनी हा
व सब छद्म नाम है, ऐसा लगता है
मात्र शिजिनी की अनुध्वनि सच है ।
उसके आरोह-अवरोह भी अगर टंकित हो सकते
तो घात बन सकती थी
लेकिन बाद विदों के लिए
फिर भी हो सकती है कठिनाई
क्योंकि ई० सी० माफ
डा० श्री के लिए काम क हो सकते हैं
किंतु अन्य किस्म के डाक्टरों के लिए
व यच्चों के चिचिर मात्र हैं ।

ओर-छोर हीन किसी बोटैनिक्ल गार्डन क
दोनों ओर कतारबद्ध वृक्षों की गोद मे सोई
खामाश सड़क पर स्थित
अगर किसी रेस्तराँ का नाम 'मैगनोलिया' हा
तो भाड़े की प्रेयसी के साथ वहाँ इतमिनान में
चाँदी के पॉट में अच्छी काँफी पीने को मिल सकती है

लेकिन खिड़की के ऊँची पर लोटती
 'मैगनोलिया' की लता नहा मिलेगी
 और न आप की कदम-पसी के लिए
 सीढ़ी पर बिछे 'कारपेट' पर
 उसने श्वेत या हलके गुलाबी रंग के फूल ।
 तब 'मैगनोलिया' नाम भी
 छद्म नामों की तरह निरर्थक लगेगा
 और उसके श्वेत या हलके गुलाबी रंग के फूल
 भाड़े की प्रेयसी-जैसा ।

ई० सी० जी० इस युग की देन है
 लेकिन यह 'मैगनोलिया' का अकारण युग भी है
 जिसकी कविता-अकविता चिचिर को
 पढ़ पाने के लिए लोग व्यर्थ परेशान नहीं
 जितने कि नामधर के नाम पर आगे हो
 आकाश को तान कर
 धरती को बिछा
 धूप खा कर हवा पीने को ।
 मैं यह हवा नहीं लेता
 इसलिए कि लोगों की मालूम है,
 हवा पीने-पाले जाव कितने जहरीले होते हैं
 किंतु जहरीलों के जहर-मार भी
 इस युग ने ईजाद कर लिए हैं
 खतरे की अब कोई बात नहीं
 तब छद्म नामों की नहा देखें
 शिनिनों को सुनें
 रेस्तराँ का 'मैगनोलिया' नाम निरर्थक हो सकता है
 किंतु उसके श्वेत या गुलाबी रंग के फूल शाश्वत हैं

बेला कलें आधी रात

सगममर की श्वेत कठोर प्रतिमा-सी
सेज पर निश्चल लेटी
परिमल-रज से आलेपित निर्बसन गौरवर्ण 'काया'
और उसके जूड़ से फँसी हुई पलटकर
वक्षस्थल पर लोटती आधी रात के समय खिलने की प्रतीक्षा में
दोहरी बेला माला की आकल्पव्यस्त योजना,
रुमानी लग सकती है
किंतु यह निबध का विषय नहीं बन सकती
कनिता की तन्वगी काया त्याग कर ।
सगममर-जैसी अनाद्युत काया में
प्रसंग से कविता की बात है
और रसानुभूति परिवेश से ।
यों कनिता के लिए कोई भी रसानुभूति अब व्यर्थ और सूठ है,
लेकिन अननघान स्थिति में
क्षुधाग्रस्त क्षेत्र में
कनिता के भिन्न प्रसंग में
वैसी ही निर्बसन काया कठोर होकर भी
दयनीय दीखती है
जिनको व्यक्ति या संस्था से दी गई मदद
प्रचार स्वार्थ की झोली में आती है
और सब के पीछे है दुर्गंधमय रक्तमाव-सी छिनाल कुणाल राजनीति

चँक या रैली देते समय

तस्वीर उतरवाने की बात समझ में नहीं आई

अंधेरे में रखी झोली स दान देनेवाले

प्रचारपरस्त व्यक्ति या सस्था—

गद्दी पर बैठ कर

लड्डू खाते गणेश और लक्ष्मी के सफेदपोश अभक्त भक्त—

और मयादापुरुषोत्तम राम की

फूल-मालाओं से सुसज्जित तस्वीर के नीचे

आराधना में झुकी कोई हरिआई—

इस सब में कुछ कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता

लगता है,

भगवान अगर है तो उसे पेशा से कोई नफरत नहीं

इसीलिए

सगमर्मर-सी प्रतिमा के वक्षस्थल पर

जूड़े से पलटकर लोटती दोहरा बेला की माला

—————खिलती है आधी रात के समय—

लड्डू खाते गणेश के जईगोश भक्तों के परिवहन

—————गुजरते हैं आधी रात के समय—

और सभी मयादापुरुषोत्तम राम

फूल-मालाओं से सुसज्जित वेश्या के घर

चुपके चुपके सुनत हैं दादरा आधी रात के समय—

—————चपा फूले, चमेली फूले, बेला फूले आधी रात ।

आत्महत्याओं के अवशेष

'धमक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे 'युयुत्सा के प्रवचन ।
 'वासासि जीमानि यथा विहाय 'की जिजीविषा
 'नवाणि ग्रह्णाति ' मे जन्मांतर जीने का विश्राम
 —सब ठीक है
 किंतु नए जीवन के ग्रहण की बात कहाँ ?
 इसी धरती पर तो ?
 तब मंदिर-लता के फलारिष्ट में क्या दोष है ?
 क्या दोष है जीवन की ध्वजान से चूर
 स्निग्ध-छाया के नीचे झिलमिल प्रकाश में
 उन क्षणों को पकड़ने में
 जबकि बाहर अनगिनत दौड़ती
 मोटर कार, बस और टाम के नाचे दरी
 महानगरी जैसे स्वयं दुर्घटनाग्रस्त हो
 पीडा से छुटपटाती रहती है ।

उपा किरण से घुली, पत्राव सी हमीन
 होना की बेटी की अनावृत्त पृथुल जघा, पृष्ठ और नितंब पर

उग आए हटर के दाग-जैमी
दीखती है महानगरी की मडकें ।

खुदकुशी-सी घूमसूरत हुगली के कछार पर,
बजाय चेतुर जाने के,
जाने कितनी बार किन-किनने त्याग दिए जीर्ण वस्त्र
नवीन वस्त्र ग्रहण करने के लिए

छोटी-छोटी खोली में
जहाँ 'इभनिंग-दन पेरिस' की नही, सस्ती 'कांता' की खुशदू
नीच की नाली से सठती दुग घ के साथ मिलकर
एक-अजीब घुटन पैदा करती है

सप्रतीतर कविता के उपमित उपमान सा
विकता है प्यार यहाँ इस महानगरी में
और यहाँ क्षण भर में

हजारों सोडा-वाटर की बोतलों के टुकड़ों में
गिखर जाते हैं लोगों के आक्रोश, अभाव और असंतोष ।
बस और ट्राम जलकर राख हो जाती है क्षण भर में यही,
और फिर सत्र शात ।

फिर लोगों का हुजूम चढ़ने उतरने लगता है
और उसमें खो जाते हैं महाकवि, वैज्ञानिक और देशभक्त ।
हुगली का हॉफता वक्षस्थल फिर मृदु श्वास लेने लगता है
जैसे कुछ क्षण पहले हुआ ही नहीं था कुछ ।

‘हावडा स्टेशन’ — ‘शुद्धा ट्रेनिंग’ की रक्तघर्षी निप
हुगली का झलमल पानी खूनी रंग-सा दीखता है
साहिल से सटकर ठहरती है पानी में
दुगा और सरस्वती की निर्मजित नगी ठठरियाँ
जैसे आत्म हत्याया के अवशेष हों ।

वृत्त : दो

सूर्यमुख देखकर लोगों ने कहा
तुम्हारे आगे कोई आकार नहीं
पीछे पाषाण पर खुदी मेरी लम्बी पंक्ति को
अनदेखा कर उन्होंने मरी
मेरे अस्तित्व की कविताओं की अवज्ञा की

बदलते प्रतिमान

पह जान कर भी
कि यदमूर जिदगी खूनमूरत नहा होनी,
सात पाबागाला सूरज का रथ
घाग जाता है,
खूनमूरती स पयरे जीवन क बिसाव को,
माहगों को ।

रथ क पहिए की बन्धडाहट
चौ का जाती है मृदु सुदूर तरु
ऊ घत तद शिखरों को, घोमला को ।

सम्का पर लामाश मोटर, ट्राम, बन और टरु क
'मिच' जैसे अचानक 'थान' हो जाते हैं
और सारा जीवन कालाहलमय हो जाता है बाहर ।

फिर भी जन कि दायरों की सन्त पहरेदारी में
सुनायम क्षण की पर्य पर
शोर व सरापा से तग, बहोश पडा आदमी,
अपने आगोश में प्रयमी का राज-सा दनाए,

कुछ सपनाता रहता है, यह सोच कर
कि उसके लिए समय का कोई गज नहीं,
तब रथगाहक के चाबुक की लचपचाहट,
खामोश कमरे में अगड़ाई लेने लगती है,
और सब कुछ बिखर जाता है,

परिधि टूट जाती है,
और समय का गज
दिन की नाप में कटकर सामने आता है ।

सतरंगी बलगात्राला रथ,
अतुरंग शिलाओं को लाघ कर,
ध्यार की धिनौनी परिणति-सा
एकाकी दोनों के बीच से होकर
रोज कोलाहलमय गति के साथ गुजरता है
और तब दिन की दूसरी नाप में कटकर
सामने आता है समय का नया गज ।

समय के गज की तरह
मान्यताओं की सीमा भी
लभ्य-रेखा तक नहीं होती ।
छुठा, आस्था, आत्मगोध से पीड़ित—
चरमराता रथ,
दिन भर चलकर अभी तो रुका है,
मेट्रो-कट सॉझ के समय इस महानगरी में,
जा सॉझ नहीं होती बॉझ
सॉझ क्या किसी के भी बॉझ नहीं होने की बात
घापित की है विज्ञान ने भी ।
मेट्रो कट सॉझ के बॉझ नहीं होने की, जिमकी भी बात है

उसमे स्वीकृति और संकेत है,
मान्यताओं के टूटते रहने के !

तब सात घोड़ोंवाले सूरज के रथ को
गुजरने दो,
खूनसूखती से पसरे जीवन के बिसात पर से
आगोश में पड़ी प्रेयसी
कब तक चिपकी रहेगी साज सी !
अलस अँगड़ाहूँ आएंगी उसे,
जब मान्यताओं का मूल्य टूटेगा ।

समय का शपथ,
एक-सा, दिन की नाप में रोज नहा ठहर सकता ।



धडकन की प्रतिध्वनि

तुम जब रात की धडकन सुनते हो
तुम जग लगातार अनिद्रा से बीमार जगजर
किगाह के घन्द होने की काँप-किच सुनते हो,
सुनते जब हो तुम
दूर जाते रथ के पहिए की घडघडाहट
पसर कर क्षीण होती गइ काई प्रतिध्वनि
एक हलका शारगुल—
उम रहस्यमय निस्तब्धता के क्षणों में,
आधी रात के समय,
आराम की घडियो में,
जब विस्मृतियाँ जगती है
अतर के बदीघरों से

तब सोयी लगेवाली

इन पंक्तियाँ को पढ़ने का स्वाद तुम जान पाओगे

जिनमें न घोलता हूँ

(जैसे प्याने में कुछ घोलता होऊँ न)

असौत की रूतियों की व्यथाएँ

शास्त्रों का संहार

फूलों में बसी आत्मा की दुग्ध इन्द्रियाँ

हृदय की बीमार अघाई हुई करुणा,

और जा मुक्त होना चाहिए था

वैसा नहीं था पहले का, परन्तुत्ताप,

जा साम्राज्य मेरे उपभोग के लिए बना था

सबका सत्यानाश

और हिमी एक क्षण व्याधा यह विचार

कि अगर मेरे जन्म लेने की बात टाली जा सकती ।

और फिर मेरे जन्म लेने के बाद से

मेरे जीवन की व मारी चीजें

जा सपन बनी रह गई ।

ये सारी चीजें आती हैं

गहरी निस्तब्धता के अंतराल में,

जब रात धरती व छल-चपट का

अपने आड़ने से ढँककर

ऊँघती रहती है ।

उस समय लगता है
दुनिया की छाती से उठती धड़कन
मेरे कानों में प्रतिध्वनित होती है,
जो छेदती चली जाती है
मेरे अतस्तल को,
और तब मैं सुनने लगता हूँ अपनी धड़कनें,
अपनी ही धड़कनों की प्रतिध्वनि ।



आँखें खलराखी

मेरे अन्दर अविवेकी एक
छोटेला भाई जो है,
आता है जी में जो, करता है,
भाई के नाते मैं कुछ कह नहीं सकता ।

सुन मैं या आपमें
जो एक बड़यालय है,
तृष्णाया स भरा दर्पहीन, स्थलित
जो एक धुन है,
उममें शिव पत्नी की आकांक्षा
(आन्धकारहित) स्थापित है ।

इसलिए नहीं कि मैं टालू जमीन पर हूँ,
म गिरता हूँ,
इसलिए नहीं कि मैं रिक्तान्ग हूँ,
मैं मजबूर हूँ
मेरा नचना, फल लगने की बात है ।

ओम से भीगे नगे पाँव पर
 गट गए पग्व जो तितली क,
 म कैरो नहा कहूँ—
 बसत आ गया ।

अनगिनत पर्यंत शिखाया,
 नदी झरने जल प्रपातों की पतली चदरिया
 पेड़ पौधों, पगडंडियों की कतारों, ज्वारा का
 अपने मे समेटे जो, गुमसुम म बैठा हूँ
 म कैरो नही कहूँ
 कि म चिहूँक पड़ूँगा—
 आँखें डर्राएँगी ।
 पुस्तक की “इति” व पूर्व की पक्ति पर
 खड़ा म अपना समीक्षक समय हूँ ।
 मैं दूँगा जन्म सबको—
 सौतेले भाइयो
 बर्यालय की तृष्णाओं
 पतिता, अपाहिजों
 मृतुओं,
 नदी, झरने, पेड़ पौधों
 पगडंडिया की पीड़ा से ऐंठी कतारों को
 और
 आँखें डर्राएँगी
 और नीर बहाएँगी ।

बाले अंगूर का सखाव

पड़ पीछे सुयो ।

हिंदुस्तान मे इतनी मांगे अनुभूति हाती
जिन्नी हम ।

उनका भी अधिख सुयो है ठठार शिल्पा,

हमलिण कि उगाय काई स्वदन गदा ।

गीतन व प्रति अनुभूत रहो या हाग स भी दस्तर

बया कोई तस्लीफ हातो ?

अतशील जीवन यापन व सबदन म अशिर

बया कोई आर अधिख रूष्ट हाता ?

जैमा हम हात है, वैमा नहा हाते

जो हम जानते हैं, वह उपलब्धि

काई ले ले हमस ।

हम निम रास्ते स चलते हैं

बद पहने से तैयार कर बया पथ नहा हो

जो भूत हा गया, उरफा भय—

जो होगाला है उमरा आतंक—

और और कल मृत हा जाने का प्राग—

ये सब काई छीन ले हमसे ।

छीन ले काई हमारे अस्तित्वपूर्ण होने का दुःखदाईपन

और रात में कुर्सी पर रखे

छजले कपड़े व प्रेत हो जाने की बात ।

जो हम नहीं जानते

जिसकी सुरिक्ल से शंका है

वह कोई हर ले हमसे ,

क्योंकि रक्त त्रिदु धी हर दौर

ताजे अंगूर के बराब सी ललचाती है हमे ।

हम जीना चाहते हैं

क्योंकि 'किडनी' का 'फगसन' अभी ठीक है ।

अस्पतालवाला का झूठ बोलने की

अमूमन आदत है ।

वृत्त : तीन

मेरे नाम की राखती से
कुछ अक्षर खिसका कर
लोगों ने मेरे नाम का गलत मानी किया

रुम और मे

कितनी बार मुड़ी बाँधी
कितनी बार जिसरी अँगुलियों के गाल में
सब कुछ बह गई—सिक्ता-ग
पा म है ।

खुरी में दुख में
हँसो में बदल में
नद में आगरा में
करले में हुदम में
जब भी जिसका साथ माँगा
और बीमार हासन की बचैन धड़ियाँ में
जब भी जिसकी याद का फैलाव चाहा
और जा नद मिली
यह रुम है ।

अकिञ्चन मोंग

अतीत के माधुर्य तुम सुझ दे दो
मैं भविष्य जी लूँगा ।
वर्तमान तुम जियो, मर्या नहीं हागी ।

छंद की वर्षभालाएँ तुम रग्य लो
पर त्रिगत गीत की गूँथ
जो फूलों, बूँदों, वन रागीचों, तडागों पर
फैली हुई है सुझ दे दो
उसमें अपने प्राणों को ध्वनित कर
मैं किसी उदासी भरी शाम का
दूर पजते किसी मंदिर क
घटे घड़ियाल की झंकटि में खो जाऊँगा ।

छम्हारे चित्रों की तुलना
और रंगों की अन्विति मैं नहीं मोंगता
किंतु उनकी गरिमा भडिता अभिव्यक्ति
तुम सुझे दे दो ।
मैं अपनी 'मोनी' के अधरों पर
बमर हा जाऊँगा ।

मानो या न मानो

रूपा की गद पगानी का जूमा था
ता वह बरफ़ों लगी थी,
दुम नहा मांगोगी ।

दिन साह फूल की डाली को झरा
पेंचरिया स अपने गालों को महला कर
मन पाया है शीतल स्पर्श,
दुम तहाँ समझोगी ।

बचुरन में रोककर पुरनैया का
मन सुना है नया गीत
दुम तहाँ स्वीकारोगी ।

बपा की पुहारों में घिरकर
पैसा रहा बदी-सा कशमकश भुवपाश में
दुम नहा पतिवाओगी ।

•

किंहु पुरात्र से गमा ।
 बल जो दुग्दारा पत्र आया था
 यह तो सच है ।
 मने जिसे बार-बार चूमा है
 सतनी ही बार दुग्दें हिचकी आई हागी
 यह तो तुम मानोगी ।



बेला और गुलाब

आज सनर आन की बात थी,

नहीं बाप ।

आज फलक पर

सितारों के चमकने की बात थी

नहीं चमक ।

दुलहन बननेवाली आज की रात थी ।

ये सन कुछ नहीं हुआ

तो इससे मैं खफा क्यों हूँ ?

सम दिन जब घुप्प अँधेरी रात

आयी थी

तो मैंने कहा था वहाँ

कि सितारा तूम चमकी ।

रात को बताया था वहाँ

कि तुम अपनी माटी में सलम गितारे लगा कर गाओ ।

आज उनके आने की बात थी

नहीं आए ।

आएँगे,

क्याकि मुझ अभी भी जीने का शौक है

और मैं अभी भी खोमता हूँ लाल गुलाब

अपने कोट के 'बटन होल' में

और

पत्तियों लगा

बेला का फूल

मेरे हाथ में

बनीसहार के लिए

प्रतीक्षित ।



अनजाने, अनचीन्हे

पत्तों के बाँध तोड़
मन की तर गोंठ फोल
मत मिलना, मत गिनना
तुम जा हो, दूर बहुत दूर कदा,
अनजाने, अनचीन्हे ।

घिटकी के कंध पर
लोट रही डाल किसी फूल की,
स्पन्दित कर जिसकी जाती है पुरनेया
झलझल-से परदे की सिहरा कर ।
सुपह-सुपह नाद उच्छट जाती है
भाषों के जोड़ बिगड़ जाते हैं ।
सपनों के तम को तुम चीरकर
मत खुलना, मत चुड़ना,
मेरे किसी छन्द के अनागत तुम, दूर जो
अनदेखे, अनजाने ।

छत पर की छद्मों के नीचे
 झकी हुई उदली में
 क्षिपी हुई रात बहुत दूर की,
 गीच कहा पार लिए जाती है,
 गाँध लिए जाती है यूँ की पुहार ।
 जल के संग डूब कोई जाता है
 डूब सभी जाते हैं कुल और ऋगार ।
 हिम के उस पार मानसर से तुम
 हम मेरे,
 उठकर तुम मत आना, मत मिलना,
 मेरे मधुर सपनों के चित्र तुम
 विन उभरे, विन सँभरे ।

वृत्तः चार

‘सत्य अप्रिय’ के द्विधियार से भयाङ्गित कर
उन्होंने मुझे असत्य-सत्य का प्रतिकार करने से रोकना ‘रोकोका’

आज दोपहर एक बहुत अच्छे,
बड़े इमानदार आदमी के अस्थि घट का
खुलस जा रहा था ।

दर्शन के हठ फुट-पाथी लोग
दर्द में शरीक थे, जुलूम में गहा ।
अच्छे आदमी की लाश भी नीलाम हाती है
मुंहमाँगा दाम बोलकर ।

धन से प्रचारित रामधुन
क्षीण से क्षीणतर होकर अस्पष्ट हो गए ।
शांति को प्रचार से क्या वास्ता ?
बढ़ तो शब्द के भंडार सूट लेता है
मृत्यु तो हमारा अस्तित्व ज्ञान छीन लेती है
सदा के लिए निदा हो गई
प्रयत्नी के कसीदा की कतरन में
अतक अटकी सुई के अचानक जुभ जाने पर
कवि पास्तरनाक का अपने वर्तमान का बोध हुआ था

राजस्थान होटल के बाहर से
एजरेते जुलूस से बट कर
अदर आए व्यक्ति की काफी के प्याले पर
धुआँ फिर घिरने लगा था,
सिगरेट के चक्रवातों में किस्ती हूँ चुकी थी ।

आज फिर रात अँधेरे का जहर खाकर
पिछले पहर सुनह को मर जाएगी
और उस पर सफेद कफन डालकर
प्रभात फिर सब को नया सुखौटा बाँध देगा
एक नया अस्थि घट ले जाने के लिए ।

कास पर झुलता ईसा मसीह

धनिष्ठ क भय से

हमने दर्शन होने पर दोनों हाथ जोड़ दिए ।

प्रतिकार के लिए हमने मूर्तियाँ बनाई ,

इस विश्वास के साथ,

कि कभी तो इन मूर्तियों में उमारगिरि जगेगा ।

हमे मंदिर बनवाने को मजबूर किया गया ।

हमने लतार्लिंगित तोरण से मजा उन्हें निमित्त किया

कि प्रायश्चित्त के लिए

कभी तो उसे यत्रि स्थान समझा जाएगा ।

हमने प्रशस्ति के लिए

मदबिवेक के विरुद्ध अपने शब्द बेचे ।

समानधर्मा ने गालियाँ दी हमें

और दाम जो मिला उसमें खोटे सिक्के निमले ।

हम जुवान भीकर

गलत प्रवचनों को पीते रह ।

परहेज की नसीहत या बज्जेनशा की

न जाने कितनी बद परहानियाँ देखी

माना कि हमारी पाठ पर चाबुज के निशान उगाकर

तुम चौद ओर मंगल पर पहुँच चुके हागे,

किंतु हमारी अपनी मेधावों सतान

तब तक धरती पर आत्म हत्या कर चुकी हागी

और वैज्ञानिक, कवि और योद्धा को

जन्म देनेवाली मा अपनी कोख

बाजार में क्लृप्त कर चुकी होगी ।

समय आया कि हर की गहराई नापनी होगी

निकष पर साना परखा जाएगा ।

तुम्हारे कलुष मन के विष

इस बार हम सुकरात का नहा पीने देंगे ।

क्रॉस पर कयतक झूलता रहगा इमा मसीह ?

•

‘शाम-ए-अवध’

यह ‘शाम ए-अवध’ की बात है दोस्त,
जो ‘एयर-कून्ड’ कपूर हाटल व भीतर
दीवार पर खुमारी में स्मट पहन दीपती है

बत्र में साया वाजिद अलीशाह अब भी
देखता रहता है लोगों की भरमाते
अपनी भूल धुलैया में

जिसकी छाती पर फफोले फूट गए हैं ।

‘गाइड’ ने कहा, खा लिए सत्र पैसे

‘इंजिनियरों और ठीकदारों ने ।

सरकार का दोष नहा ।

वह तो अब भी यायावरो से वसूलती है पैसे

मरम्मत के लिए ।

‘शाम ए-अवध’ का गौरव

तो देखा हमने ‘रिजिडेंसी’ में,

जहाँ अब भी वाजिद अलीशाह और समके साथी

‘एनेमी’ घापित हैं सगममंररी पत्थरों पर

आजादी की लड़ाई शुरू हुई सन् अट्टारह सौ सत्तावन में

यह बकवास है ।

पढ़े कोई जाकर यह ‘रिजिडेंसी’ के खडहरों में ।

शहीदों के दयनीय स्मारक पर
जाने क्यों आया था गुस्मा गोमती को
बुढ़ा साल पहले निगल जाने को
अपने गर्भ में 'एनेमी' का यह कलक ।

नवाब-ए-अवध के इमामवाड़े ने भी इसी साल
सोचा था डूब मरने को गोमती के जल-प्लावन में ।
इमामवाड़े का निर्माण किया था
घाजिद अलीशाह ने अकाल पीड़ितों के सहायतार्थ
तब तक सीख नहीं पाया था आदमी
अकाल से आक्रांत समय में
नवाबी खरीदना ईमान बचकर ।

तो हम 'शाम-ए अवध' की बात कर रहे थे दोस्त ।
न अवध जैसी कोई चीज है अब
और शाम तो कबको कर चुकी खुदकुशी
हजरतगंज की सड़क पर स्थित 'कपूर' होटल में

खुदकुशी की बात नवाब का भाई नहीं थी
फिर भी के हाथ जहर के प्याले को देखकर
कहा था घाजिद अलीशाह ने
कि जहर खाकर तो पश्चिम में डूबता है आफताब
घाजिद अलीशाह के तो बगल से गुजार दो एक गद्दिन को
और वह खुद ही गुजर जाएगा इस दुनिया से ।

जहर खाकर मर गई अवध की शाम उसी दिन
अभी तो 'शाम ए-अवध' की लाश है 'कपूर' होटल में
अवध का लिनास उतारा हुआ, स्कर्ट पहने ।



सर्प-दश

खत पर

उनक डाक-घर की मुहर लगने के पहले
जा यमुना की जल-धारा में समर्पित हो गई
वह उनकी प्रेमिका थी ।

हिम व सर्प-दश से
सुर्दा होगई जाड की शाम को
जब धुलकने ही वाले थे कुछ शब्द
उनकी कलम की नोक से,
आई जो अनागत-सी
बेचुल बदल कर कहती हुई—
आत्महत्या फरेब थी
वह उनकी नायिका थी ।

हकीमी किताबों में
डूंगा हुआ छोड़ उन्हें
चली जो गई अभी
“एयर होस्टस” की ड्यूटी पर

कोलाहल से दूर
जमीन से कट कर हवा में
वह उनकी पड़ोसिन थी ।

धरतव और कृति में शोहरत पा
प्रचारक के मंच पर आहत हो
छिपा छिपा बलीव जो था,
वह उनका नायक था ।

ये प्रेमिका, ये नायिका, ये पड़ोसिन, ये नायक
जो बलीव हैं वे सब तुम हो ।
मैं तो सबल हूँ, सभी दशों का महा मंत्र ।

•

हमारा अपना

यह जो नया है, धरा पर, गगन में
गगन के सघन बादलों के परे भी
हमारा है ।

रुमानी खभो, बगुरों, प्राचीरों के पार्श्व में
नया नित जो कुछ हमने उठाया
हमारा है ।

उनीदी पलकों की
लाल-लाल डोरी के पलनों पर
जिन नए बिंदुओं को दुलराया हमने,
हमारा है ।

माना कि हमने दिया था स्वर
पर साधा है हमने
सुरों को मिलाकर जो गाया है हमन,
हमारा है ।

धारा के आगे की राह की काट कर
नदी के बहाव को हमने सँवारा जो,
हमारा है ।

मेघ के बेटों का
मांदल बजाना सिखाया जो हमने,
हमारा है ।

बपा की बेटी को
माँझ, सुग्रह, आधी रात
पाँवों में झाड़र झमकाया है हमने
लहरों को ताल दिए टलम लहलह
कूलों को छोंह दिए सन सन मन
फूलों की बाँह
और शूलों को ठाव दिए अतस्तल
नैनों को गीत दिए छल छल छल
यह सब हमारा है ।

निज मे मे देकर जो मिरजा है हमने
वह बेटा हमारा है ।
हिमालय की बफानी चाटी जो लाल है
वह खून हमारा है ।

इन नदियाँ को, झरनों को, सागर-समुद्र का
बाँधा जा हमने
यह शीय हमारा है,
यह हवा, यह गगन
गगन के परे लोक और लोक तक का
जो नापा है हमने
वह गज हमारा है,

यह दूरी जो सिमटी है, समय जो सिकुड़ा है
वह युग जो है हम में, हम जा है युग में
वह सत्र हमारा है ।

वृत्त : पाँच

मेरे व्यवित्त्य को काँच समझ कर
उम्होंन अपनी तखीर उसमें देखी
भौर तडान्हताडा तिरिड, की

नयी निमित्त

अरुण-शिखा की होंक ने
जिस दिन तुम्हें घोखा दिया,
उस दिन तुम्हारे पिता ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति
जम कर पत्थर हो गई
और तब से आदमी उसकी अनुकृति
अपने उच्छ्वासों की छेनी से
अजता की गुफाओं में,
कोणार्क के मंदिरों, दीवारों, स्वर्ण कपाटों, कलशों में
खोद रहा है ।

तुम अपनी पापाणी को जीवित करो
अपना अभिशाप उतारो
मेरा स्पर्श ला ।

इसलिए कि तुम महत्त्वाकांक्षी हो,
दलों में निभक्त होकर सागर को मग्न दोगे
किंतु तुम्हारी मधनी के शिखर पर
तुम्हारी इच्छाओं के फन होंगे
और चरणों में सागर की उद्वेलित लहरें
जो द्वेष उगलेंगी तो उसे कौन पिएगा ?
मेरे भाल पर चाँद है ।
तुम उसकी सुधा लो ।

अधूरी कथा सुनकर

म तुम्हें फिर नहीं जन्म लेने दूँगा,

नहीं तो ये महारथी फिर घेरकर

तुम्हारा घघ कर देंगे ।

म प्रतिशाघ के लिए बारबार महारनहा रचा सकता

तुम मुझ पहचानते नहीं ?

म तुम्हारा पिता हूँ,

तुम मेरी व्यथा-कथा लो ।

तुम चाँद पर उतर गए तो इससे क्या हुआ ?

तुम अपना विपाक्त मस्तिष्क और विद्वेपी हृदय

वहाँ भी साथ लेते जाओगे ।

सीमा, सिन्धु और समर की

जय वहाँ भी विजय होगी

तो विज्ञान अपने अधरों पर हँसी ले

आँखों से अजस्र धार बहाएगा

और मा अपने गर्भ में

वैज्ञानिक पुत्र की हत्या कर देंगी ।

मै तुम्हें विपाक्त मस्तिष्क और विद्वेपी हृदय लेकर

वहाँ नहीं जाने दूँगा

मै द्रष्टा, स्रष्टा और ब्रह्मा हूँ ।

मै तुम्हें नई निमित्त दूँगा

तुम मेरी चाक पर चढ़ो

तुम मेरी चाक पर चढ़ो, चाक पर चढ़ो ।

म तुम्हें नई निमित्त दूँगा ।

•

कैनवास

नीम क पड क पीछे—

चौदी का नया वह गटखरा है,

सम तुम अपनी तराजू पर

बजन दा, माप दा ।

गगन क तार हीरे की कील ह —

उसे तुम खरीने मे

अपन कैनवास पर

ठाको भी ।

नीली सतह पर ये ग़ादल —

साबुन के फेन हैं

उनस तुम मैल निज

काटा भी ।

मेवा क रीच चपल चमकी यह त्रिजली—

भाल पर कौ धी कहा दद की खबा है

उसकी तुम पीछा

कुत्र भागा भी ।

इकावन

नही तो, यह चाँदी का बटखरा,
हीरे की कील,
साबुन के फेन,
दर्द की रेखा
सब स्टेज के नकाब हैं,
बाजार से जिनको तुम
उधार ले सकते हो ।

खेलू मेरे खेलू

सेतु मेरे हनु, कहते लोग,
जो तुमने बनाए, टूटने दो ।
दिया जो तुमने जलाया सेतु पर
तुम स्नेह समझो दो नहीं
तुम दो नहीं शीर्षक उसे निज पत्ति दो ।

तुम्हारे सेतु के स्तम्भ सह सकत नहीं
आघात धारा की खानी के
दायरे में बंद नीले बल्ल के नीचे
रचाए बेसबज चुप्पी रहो मत ।
तुम उसे दो सुखरता परिवेश की,
अपनी हमारी दग्ध पीड़ा की
लुभा कुठा दबी विलुब्ध धारा की ।

घास को तुम खेत दो ।
तुम लहलहाती फसल दो ।
मत दो उसे आराम से बैठ कहीं चुप
बंद कमरों के सुलायम क्षण ।

हवा को छुम द्वार दो ।
दर्शित को आकाश दो ।
बच्चे गिनाव क प्रे दन सेतुआ को टूटने दो
दो दिया पुवने अफला सेतु आ
फिर द्वार जॉगन क परे भी
नदी जगल ग्रेत पैली घाटिया सरु
पसरता है आ रहा
लटता तपित प्रयाश
लेकर हाथ में नक्षत्र यह आकाश

•

लूपानी दरिया, चाँद और आकाश

गंगा की छाती पर
जग जाए है छाह रग के दाग ।
मनम सुदा हवा का मगीत
जैस सुर म उतर गया है ।

लूपानी दरिया क उम पार
एक मुर्झाए पीले पात की तरह
फेंक दिया गया है चाँद ।
पैले पीले बाखू के तट से
बैधी हे छोटी बड़ी अनेक नावें ।

बधखुले पाल बितराए पतवार
गोंम उल्ले, नाव घर से छठते धुएँ
उड़ी मफाई से
किमी न कसीदा कान दिया है ।

दरिया की छाती पर बहते
पड या छत या शन क ऊपर
आसमान मे उडत स कौए, चील आदि चीखत है ।
लगता हे
उतले आकाश की छत म
लगा दिए गए हैं
काले छाटे छाटे पिक्चर काट कर !

खोल दो तुम ग्रंथि

खोल दो तुम ग्रंथि अपनी,
बाँध सकता नहीं
मन क क्षणों में से कुछ वहाँ
क्योंकि मेरी जिद अलग है ।

मैं नाप लेता व्याम, वारिधि, क्षितिज के बिस्तार
अपनी नजर में म याघ लेता हूँ,
उत्ताल लहरें शख सीपी ज्वार को ।
इसलिए मैं नाप दूँ कैसे
तुम्हारी राह की दूरी ?
क्योंकि मेरी नजर का
वह मापनाला यत्र अलग है ।

मेरे वृत्त का जो केंद्र है
उससे नहीं है खिंच सका अतक कोई वह चाप
जिस पर सोचकर
विज्ञान कुछ देता सरल फल ।
मैं लाचार हूँ, निज में सफल ।
इसलिए मैं खाच दूँ तुम तक कहाँ
वह कौन सी रेखा
जो फिर घूम कर कुछ घेर लेती स्वतः
क्योंकि मेरे कन्द्र से
हर घेर की वह हद अलग है ।

हरनाक्षर

मेरे नाम की तपती से
कुछ अक्षर खिसका कर
लोगों ने मेरे नाम का गन्त मानी किया ।

मेरे व्यक्तित्व को काँच समझ कर
उन्होंने अपनी तस्वीर उसमें देखी
और तडालताडा तिरिङ की ।

नज़मी ने ज़र मुझे तग़डा तार्किक कहा,
लोगा ने मुझ पर डुराग्रह
और झड़ी आलोचना का झामट आरोप थोप दिया ।

‘ सत्य अप्रिय ’ के हथियार से भयाक्रांत कर
उन्होंने मुझे असत्य-सत्य का प्रतिकार करने से राका ‘रोकाको
चुप्पी साधे रहने की ‘गोल्ड’ बता कर
भद्रों ने चुपचाप स्वार्थ निहित साधा किया ।

सूर्योन्मुख देख कर लोगों ने कहा,
तुम्हारे आगे कोई आकार नहीं ।
पीछे, पाषाण पर खुदी मेरी लम्बी पक्ति को
अनदेखा कर उन्होंने मेरी,
मेरे अस्तित्व की कविताओं की अवज्ञा की ।

अपन प्रयाग का 'लुन्टापेट' धापित न

लागा न कहा,

तुम 'मन और मानस' बच न

उमे न्याय की मज्जा दा ।

'आकट आहार' का रत्न और वीथ परार पर

दास्ता ने मुझ 'बीतराग' और दुर्लभ 'बनरामा' कहा

लेकिन मेरी कनिल ऋचाएँ उन

कुडमगत दहशाली का तहां लगा ।

उन्हान 'क्षण' को 'क्षय' और 'ममय' का 'व्यय' प्रताप

जीवन को अश्लील कहा,

निष्ठु म क्षणा को जीता हूँ और ममय का भागता हूँ

यह म उन्हें कैसे समझाऊँ

यह म उनसे कैसे कहूँ कि

मैं जहाँ हूँ, निमनहा—

मुझ का दसरी —

शिलालेख का कुटज-कल्प

‘पापाण पंक्तियों’ का अपाक्तेय संगतराश कवि शिला-
शिल्पी होने की शीर्षक-घोषणा के साथ कुटज-किंजल्क-पेशल
रसज्ञता की उपचिन्ति का सामाजिक भी है। पत्थरों पर
अपने उद्भूत क्षणों की उत्कीर्ण करने की शक्ति और
महत्वाकांक्षा का यह कवि अपनी शिलीभूत अभिव्यक्तियों के
कारण किमी सम्राट के शिलालेख-सा कालजयी बनने की
सभावना रखता है ता विघटित मान-काल में स्ताक-स्खलित
आलोचना की अर्हता भी।

काल से खडित क्षणों का अश्मानुलेप, काल के काले
पत्थर पर उजले क्षणों की चमेली, गतिशीलता से खींच कर
इतिहास-स्तम्भों पर ठहरा हुआ क्षण, काल की धारा से
विच्छिन्न पुष्करिणी के सौंदर्य का क्षण, पुष्करिणी में उत्पन्न
शतदल पर चमकते जलबिन्दु क्षण, पापाण पर खुदे खुरदुरे-से
क्षण—इन क्षणों के अक्षर एकत्र होकर वाक्यपदीय प्रतिमान
पर पति बन गए।

क्षण विलक्षण है, बर्फ की डली है, वाष्प का टुकड़ा है
और मिश्रित अनुभूतियों का कौकटेल भी। ये क्षण ‘कालो-
निरवधि’ के गत्यपेतत्व भी प्रमाणित करते हैं।

‘मैगनोलिया’ की क्षणकोप पखरी पर भाड़े की प्रेयसी
के साथ ‘कविता अकविता के चिचिर’ पर विचार करनेवाला
कवि इतर मनस्क होता हुआ अतत दिक् पर सोकर,
आकाश की ओर लेता है पर हवा नहीं पीता।

अव्यय समय और अक्षय क्षण के विलसक ध्वनि तब से
बुने आमन पर बैठा गुफावासी कवि ‘केनिल-ऋचाओं’, में अपनी
कूटस्थ कथा का कहीं आग्यान, कहीं सगायन और कहीं
‘यपदेश करता है।

‘पापाण पंक्तियों’ उदय स्तम्भों पर उत्कीर्ण है जो दिक् से
अधिक काल का मान प्राप्त करेंगी।